International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

भारत में मानवाधिकारों व सामाजिक न्याय की स्थिति : दलितों के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. लक्ष्मी नारायण

सारांश

मानवाधिकार व सामाजिक न्याय एक सभ्य समाज की आधारशिला है। यह सामाजिक व राजनीतिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तब तक नहीं कर पाता जब तक कि उसे मानवाधिकारों की पूर्ण व समान उपलब्धता न हो। राजनीतिक व्यवस्था चाहे किसी प्रकार की हो, राज्य का सर्वोत्तम लक्ष्य अपने–अपने नागरिकों के मानवाधिकारों का संरक्षण करना है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में तो यह अत्यन्त अनिवार्य है। इसी के मद्देनजर भारत में भी प्राचीन काल से ही जब राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी, मानवाधिकार किसी न किसी रूप में अवश्य उपस्थित थे पर यह सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। दलित वर्ग जिन्हें प्राच्य शास्त्रों में शुद्र कहा गया है, की स्थिति सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में अत्यन्त दयनीय थी। दलित वर्ग में दमित, उत्पीड़ित व हाशियाकरण के शिकार वे सभी स्त्रीयाँ व पुरुष शामिल हो जाते हैं जो किसी जाति, धर्म, वर्ग या क्षेत्र से जुड़े हो। इस दमित वर्ग के लोग रोम में दास, स्पार्टा में क्रीत, अमेरीका में नीग्रो कहलाते थे, जबकि भारत में इनको दलित वर्ग की संज्ञा दी गयी। मनु द्वारा उद्भवित वर्ण व्यवस्था ने कालांतर में जाति का रूप धारण कर लिया। वर्ण तथा जाति जिसका नाम चाहे कुछ भी रहा हो, शोषण का रूप समान था। आधुनिक काल में हुए समाज सुधार, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन तथा शिक्षा के विस्तार ने इन दलित वर्गों के मानवाधिकार व सामाजिक न्याय की आवाज को बुलन्द किया।

मूल शब्द– मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, दलित, अस्पृश्यता।

प्रस्तावना

मानवाधिकारों का विचार मानव इतिहास के आरम्भिक चरण से ही रहा है। हालांकि समयानुसार यह अवधारणा परिवर्धित व परिवर्तित होती रही है। मानव अधिकार वे अधिकार होते हैं जो मानव व्यवहार के मानकों को स्पष्ट करते हैं। एक मानव होने के नाते प्रत्येक मानव ऐसे बहुत से मानव अधिकारों का हकदार है जो उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में मददगार हो। इन सभी अधिकारों का राज्य द्वार संरक्षण भी आवश्यक है। वस्तुत अधिकारों की लड़ाई तो मनुष्य के पैदा होते ही आरम्भ हो जाती है। जब एक बच्चा अपनी माँ के दूध के लिए रोता है तो अधिकारों की प्रारम्भिक नींव रख दी जाती है। अतः मानवाधिकार मनुष्य को प्राप्त वे न्यूनतम अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। ये अधिकार सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

न ही समाज के लिए कोई उपयोगी कार्य कर सकता है। इन अधिकारों के बिना एक सभ्य, सुखी मानव–जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लोकतांत्रिक संविधान, निष्पक्ष न्यायपालिका तथा स्वतंत्र व सार्वजनिक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध मीडिया इन अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक व सामाजिक समझौता सिद्धांत के समर्थक जीन जैंक्स रूसो ने लिखा था कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है पर सर्वत्र ही जंजीरों में जकड़ा हुआ है।" अपनी इस स्वतंत्र चेतना में रूसों ने शोषण, असमान, गरीबी में कैद मानव की स्वतंत्रता, समानता व भातृत्व पूर्ण जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को मुखर आवाज दी थी। ब्रिटेन के प्रसिद्ध आदर्शवादी विचारक थॉमस हिल ग्रीन ने कहा है– "मानवीय चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता अधिकारों में निहित है तथा अधिकार राज्य की मांग करते हैं।

एच.जे. लॉस्की के अनुसार– "अधिकार, सामाजिक जीवन में वे शर्तें हैं जिनके बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास असंभव है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकरों की सार्वभौमिक घोषणा (10 दिसम्बर, 1948) के अनुच्छेद 1 व 2 में मानवाधिकरों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "सभी मनुष्य समान अधिकार व सम्मान लेकर पैदा होते हैं और उन्हें सार्वभौमिक घोषणा में वर्णित सभी अधिकार व स्वतंत्रताएँ बिना जाति, धर्म, लिंग, भाषा, क्षेत्र, राजनीतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थितियों के भेदभाव के स्वतः मिल जाते हैं।"

सामाजिक न्यायः

सामाजिक न्याय की संकल्पना बहुत व्यापक है जिसके अन्तर्गत 'सामान्य हित' के मानक से संबंधित सब कुछ आ जाता है जो दमित व दलित हितों की रक्षा से लेकर निर्धनता व निरक्षरता के उन्मूलन तक सब पहलुओं को शामिल करता है। यह न केवल विधि के समक्ष समानता के सिद्धांत का पालन करने और सामाजिक व आर्थिक समता से संबंधित है बल्कि इसका संबंध उन कुत्सित सामाजिक कुरीतियों जैसे– दरिद्रता, बीमारी, भूखमरी, अस्पृश्यता आदि के दूर करने से भी है जिसकी चपेट में तीसरी दूनिया के अधिकांश देश हैं।

सामाजिक न्याय का संबंध उन निहित स्वार्थों को समाप्त करने से है जो लोकहित सिद्धि के मार्ग में अड़चन पैदा करते हैं तथा यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में है। इस दृष्टि से दूनिया के पिछड़े व विकासशील देशों में सामाजिक न्याय का आर्दश राज्य के लिए यह आवश्यक बना देता है कि वह पिछड़े और समाज के कमजोर वर्गों की हालत सुधारने के लिए ईमानदारी से प्रयास करें।

सामाजिक न्याय की अवधारण का अभिप्रायः यह है कि नागरिक, नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर भेद न किया जाए व प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण व

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

समान अवसर उपलब्ध हो। समाज के कमजोर व शोषित वर्गों का किसी भी रूप में शोषण न हो। सामाजिक न्याय की मांग है कि समाज में सुविधाहीन वर्गों को अपनी सामाजिक–आर्थिक असमर्थताओं पर काबू पाने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने के योग्य बनाया जाए। समाज में शोषित वर्गों को ऊपर उठाए बिना, हरिजनों पर अत्याचार रोके बिना, अनुसूचित जातियों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों का विकास किए बिना सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं हो सकती।

अवधारणात्मक रूप से 'दलित' शब्द आधुनिक युग की देन है। दलित का शब्दिक अर्थ है – दलन किया हुआ। इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका शोषण व उत्पीड़न हुआ है। हिन्दी के विभिन्न शब्दकोषों में दलित का अर्थ लिखा है– मसला हुआ, मर्दित, दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आन्दोलन के बाद यह शब्द हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त होता है। यहां उस ऐतिहासिक सन्दर्भों को जानना जरूरी है, जिसके परिणामस्वरूप दलित शब्द का प्रादूर्भाव हुआ। सर्वप्रथम 1891 में भारत में जनगणना करते वक्त अंग्रेजी शासन ने जाति को आधार बनाया। इस जनगणना के पश्चात् ब्रिटिश सरकार सभी कामगार जातियाँ जो हिन्दू समाज व्यवस्था के निम्न पायदान पर धकेली हुई थी, का उल्लेख करने के लिए 'पददलित जातियां' (डिप्रेस्ड क्लासेज) शब्द का इस्तेमाल करने लगी। इन्ही पददलित जातियों को महात्मा गांधी जहाँ 'हरीजन' कहते थे वहीं अम्बेडकर 'उत्पादक जातियाँ'। सन् 1919 में मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड द्वारा राजनीतिक निकायों में प्रतिनिधित्व देने के लिए अस्पृश्यों, आदिवासियों व पिछड़े वर्ग को 'दलित वर्ग' के अन्तर्गत शामिल किया गया। इसी आधार पर 1921 की जनगणना में 'दलित वर्ग' के अन्तर्गत अस्पृश्यों, आदिवासी व अन्य पिछड़ा वर्ग को भी शामिल किया गया। लेकिन सवर्णों के प्रतिरोध के कारण सन् 1931 की जनगणना में आदिवासी समुदायों व अन्य पिछड़ा वर्ग को दलित वर्ग से अलग कर दिया गा। इस तरह व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक आधार वाले दलित वर्ग को अस्पृश्यों का पर्याय बना दिया गया। अंततः भारत सरकार अधिनियम, 1935 की एक अनुसूचि में अस्पृश्यों को 'अनुसूचित जातियों' के रूप में चिन्हित कर दिया गया। वर्तमान में इन्हीं अनुसूचित जातियों को दलित वर्ग कहा जाता है।

भारत में दलितों की सामाजिक स्थिति : ऐतिहासिक सन्दर्भ में

ऋग्वेद के दसवें अध्याय में पहली बार शूद्रों का उल्लेख किया गया, जिसका काल इतिहासकारों द्वारा प्रायः 1500 ई.पू. निश्चित किया गया है। दसवें अध्याय में ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न भागों से अलग–अलग वर्णों की उत्पत्ति की बात कही गई है। तदनुसार सिर से ब्राह्मण की उत्पत्ति बताई जिसका कार्य था अध्ययन तथा अध्यापन। क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजाओं से हुई जिसका कार्य समाज की रक्षा करना था तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति कही

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

गई, जिनका कार्य उपरोक्त वर्णों की सेवा करना था। ऋग्वेदिकोत्तर काल में अधिकाधिक अपात्रताऐं इस समुदाय पर थोपी जाती रही। प्राचीनकाल में भारत आने वाले यूनानी तथा चीनी यात्रियों ने इस वर्ण का अपने संस्मरणों में बड़ा ही हृदयविदारक विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होनें लिखा है कि इस समुदाय के लोगों को बस्ती में प्रवेश के समय टीन का टुकड़ा बजाकर अपने आने की सूचना देनी पड़ती थी। स्मृति साहित्य में ये प्रावधान मिलता है कि यदि ये लोग वैदिक मंत्रों का उच्चारण सुन लें तो उनके कानों में खौलते हुए शीशे डाल देने चाहिए। यदि सवर्ण जाति के लोगों का स्पर्श ऐसे लोगों की परछाई से भी हो जाए तो उनके सात जन्मों के पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धीरे–धीरे यह व्यवस्था भेदभाव, छुआछूत, शोषण और अत्याचार पर आधारित व्यवस्था बन गयी। मुस्लिम और ब्रिटिश शासकों ने इस व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। उन्होंने इसमें हस्तक्षेप से परहेज किया और इस व्यवस्था का उपयोग अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए भी किया। यह व्यवस्था इतनी जकड़न वाली हो गयी कि न तो कबीर, नानक, महात्मा फुले, सन्त ज्ञानेश्वर, महात्मा गांधी आदि ही इसे तोड़ पाये और न भारत का संविधान और न आजादी के बाद बनाये गये अनेकानेक कानून इसका पूर्ण खात्मा कर पाये।

भारत में मानवाधिकर व सामाजिक न्याय की स्थिति : दलितों के सन्दर्भ में संवैधानिक व वैधानिक अवलोकन–

भारतीय इतिहास में दलितों की दयनीय प्रस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए सवंधिान निर्माताओं ने सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार को सम्बल प्रदान किया। साथ ही सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का प्रावधान किया गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सवंधिान के अनुच्छेद 14 से 18 में समानता के अधिकार का वर्णन किया गया है, अनु. 14 में कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान है तथा राज्य को प्रतिबन्धित किया गया िकवह सभी नागरिकों के लिए समान कानून बनाए। अनु. 16 में राज्य द्वारा प्रदत्त सेवाओं एवं नौकरियों में भेदभाव को समाप्त करने का प्रावधान किया गया तथा अनु. 16(4) में सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से दलित वर्गों के लिए विशेष अधिकार उपलब्ध कराए गए हैं। अनु. 17 द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन करते हुए अनुसूचित जातियों के साथ किये जाने वाले भेदभाव को अवैध ठहराया गया है तथा इस हेतु उचित दण्ड की व्यवस्था की गयी है। अनु. 21 के अन्तर्गत भारतीय नागरिक को जीवन का अधिकार प्रदान किया गया है, यहां जीवन का अर्थ केवल पशुवत जीवन नहीं वरन् मानवीय गरिमा के साथ जीवन यापन माना गया है। अनुच्छेद 29(1) में राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा। यह अनुच्छेद अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की उद्घोषणा करता है। संविधान का अनु. 38 सामाजिक न्याय की बात बुनियादी अधिकार एवं आवश्यकताओं के आधार पर करता है जो दलित मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है। इसमें कहा गया है कि राज्य जनहित में ऐसी सामाजिक व्यवस्था

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

सुनिश्चित करेगा, जिससे सभी को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके। अनु. 46 में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह अनुसूचित जातियों सहित समाज के कमजोर वर्गों को शैक्षणिक व आर्थिक रूप से विकसित और प्रोत्साहित करने में विशेष ध्यान देगा। अनु. 75 में संघ द्वारा कुछ राज्यों को अनुदान देने की व्यवस्था की गई है। संसद उन राज्यों को विशेष केन्द्रीय अनुदान देगी जो अनुसूचित जाति और जनजातियों के कल्याण या अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासनिक स्तर की उन्नति के प्रयोजन के लिए भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गयी योजनाओं को क्रियान्वित कर रहे हैं। संविधान के 16वें अध्याय में अनु. 330 से 342 तक अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। इन वर्गों के लिए अलग से आयोग और विशेषाधिकारी नियुक्त करने का भी प्रावधान है ताकि वह इससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं की तरफ विशेष ध्यान दे सके।

भारत में दलित मानवाधिकारों एवं सामाजिक न्याय हेतु अनेकानेक विधान भी पारित किये गये हैं। संविधान के अनुच्छेद 17 को वास्तविक रूप देने हेतु अस्पृश्यता (उन्मूलन) अधिनियम 1955 पारित किया गया, जिसे 1976 में संशोधित कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 में परिवर्तित कर दिया गया। इसमें मुख्य रूप से धर्म के आधार पर भेदभाव, सामाजिक भेदभाव, अस्पताल या किसी भी सार्वजनिक स्थान पर छुआछूत के कारण भेदभाव, माल बेचने या सेवा करने में भेदभाव आदि के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है। इसे निजी कम्पनियों या संस्थाओं पर भी लागू किया गया है और जाति के कारण जबरदस्ती काम कराने को भी दण्डनीय बनाया गया है, इस कानून में मुकदमों की सुनवाई सरकारी तौर पर किये जाने का प्रावधान है और स्वयं को निर्दोष साबित करने का भार भी दोषी पर डाला गया है। 1989 में अनुसचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम बनाया गया। इसमें अधिक कठोर प्रावधान रखे गये। जिनके अन्तर्गत जाति के आधार पर अपमानित करना, उसे नीचा दिखाना, बेगार कराना, सम्पत्ति को क्षति पहुंचाना आदि जैसे कृत्य भी दण्डनीय अपराध घोषित किये गये हैं तथा इसके लिए कम से कम 6 माह या अधिकतम 5 वर्ष तक की सजा दी जा सकती है। इसमें अनुसूचित जातियों के प्रति कर्तव्यों की उपेक्षा करने पर लोक सेवक के लिये भी दण्ड का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम में राज्य सरकार को निवारक कार्यवाही करने तथा सामाजिक जुर्माना लगाने का भी अधिकार दिया गया है तथा इसके अन्तर्गत अपराधों पर विचार के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इस कानून के अन्तर्गत अत्याचार पीड़ित व्यक्ति के लिए मुआवजे का भी उपबन्ध है और इसके लिए केन्द्र सरकार को नियम बनाने के अधिकार दिये गये हैं। अधिकांश राज्यों में दलित वर्ग बन्धुआ मजदूरी प्रथा और बाल मजदूरी प्रथा से उत्पीडित रहा है। अतः बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976, बाल मजदूरी (निषेध एवं नियमन) अधियिम 1986 तथा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 जैसे कानून भी इस सम्बन्ध में प्रासांगिक है। इस

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

प्रकार भारतीय राज्य में दलितों को सामाजिक न्याय प्रदान करने हेतु अनेक संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान तो किये गये हैं साथ ही संस्थानात्मक तंत्र भी विकसित किये गये हैं।

भारत में मानवाधिकार व सामाजिक न्याय : दलितों के विशेष सन्दर्भ में व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य

सैद्धान्तिक आधार पर संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान होते हुए भी दलितों की यथार्थ स्थिति में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ है। व्यावहारिक स्थिति पर दृष्टि डाली जाये तो स्पष्ट होता है कि 1955 के अस्पृश्यता उन्मूलन अधिनियम लागू हो जाने के पश्चात् भी अस्पृश्य व्यवहार के हजारों मामले दर्ज किये जाते हैं। सुखदेव थोराट ने इन मामलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि को इंगित किया है। थोराट ने इन मामलों की संख्या 50 के दशक में 480, 60 के दशक में 1903, 70 के दशक में 3240, 80 के दशक में 3875 तथा 90 के आधे दशक में 1672 बतायी। 21वीं सदी से इस तरह के मामलों में तीव्रता आयी है, राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो द्वारा दर्ज मामले इसकी पुष्टि करते हैं, वर्ष 2006 में अनुसूचित जाति के विरूद्ध अत्याचार के 27070 मामले दर्ज किये गये। 2007 में 30031, 2008 में 33615, 2009 में 33594, 2010 में 32712 तथा 2011 में 33719 मामले दर्ज किये गये। ये आंकड़े विभिन्न सरकारी प्रतिवेदनों के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं, जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। इन मामलों से कहीं अधिक दलित वर्ग प्रतिदिन अस्पृश्यता के व्यवहार को सहन करता है। 21वीं शताब्दी जिसे संचार, प्रौद्योगिकी एवं विकास की सदी कहा जाता है, में भी दलितों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। मानवाधिकारों के आइने में आज भी इनका जीवन गरिमाहीन एवं पशुतुल्य है। भारत में दलित कुल जनसंख्या का 16.48 प्रतिशत है जो देश की आबादी के छठे भाग से भी ज्यादा है परन्तु विडम्बना यह है कि वे भारत के कुल भू–भाग के छठे भाग के भी मालिक नहीं है। जो जमीन उनके पास है वह भी सिंचाई एवं उपजाऊ भूमि के आधार पर निम्न स्तर की है। भूमि पर अधिकार नहीं होने के कारण अधिकांश दलित मजदूरी एवं सफाई से जुड़े निम्न स्तर के कार्यों यथा झाड़ू लगाना, मैला ढोना, मरे जानवरों को हटाना एवं उनका चमड़ा उतारना, उसे साफ करना आदि में संलग्न है।

आज भी देश के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों को सार्वजनिक कुंओं से पानी नहीं भरने दिया जाता है और ना ही मंदिरों में प्रवेश करने दिया जाता है। कई गांवों में आज भी नाई दलितों के बाल नहीं काटते तथा दलित दूल्हों को घोड़ी पर नहीं बैठने दिया जाता है, यहां तक कि शिक्षा के केन्द्र विद्यालयों में भी दलित छात्र–छात्राओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। उनके बैठने के लिए अन्तिम पंक्ति निर्धारित होती है तथा बैठने के लिए उन्हें दरी या टाट–पट्टी नहीं दी जाती है। परम्परागत सामाजिक असमानता एवं छुआछूत का दंश दलितों की सवर्णों पर छाया नहीं पड़ना, सूर्योदय एवं सूर्यास्त के बाद ही घरों से निकलने की अनुमति होना, यद्यपि कम हुआ है, तथापि

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

संस्तरीकरण के रूप में दलित आज भी गांव एवं कस्बे में दक्षिणी छोर पर रहने को मजबूर है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार दलितों की यथार्थ प्रस्थिति को निम्न प्रकार देखा जा सकता है–

- 37 प्रतिशत दलित गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं।
- 1000 पर 83 दलित बच्चे अपने प्रथम जन्म दिन के पूर्व मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।
- 45 प्रतिशत दलित पढ़ना–लिखना नहीं जानते।
- दलित महिला को दोहरा विभेदीकरण झेलना पड़ता है, एक तो जाति का दूसरा लैंगिक।
- केवल 27 प्रतिशत दलित महिलाएं ही अपने बच्चों को किसी चिकित्सकीय संस्था में जन्म दे पाती हैं।
- लगभग एक तिहाई दलितों को आधारभूत सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं है।
- 33 प्रतिशत गांवो में आज भी यह स्थिति है कि स्वास्थ्य कार्यकर्ता दलितों के यहां जाने से इन्कार कर देते हैं।
- 27.6 प्रतिशत गांवों में दलितों को पुलिस थानों में प्रवेश करने से रोका जाता है।
- 37.8 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में खाने के दौरान दलित बच्चों को सवर्ण बच्चों से अलग बैठना पड़ता है।
- 23.5 प्रतिशत गांवों में दलितों को उनके घरों पर डाक नहीं पहुँचायी जाती।
- 48.4 प्रतिशत गांवों में भेदभाव एवं छुआछूत के कारण दलितों को जल स्रोतों का उपयोग नहीं करने दिया जाता।
- भारत में लगभग आधे दलित बच्चे कुपोषण का शिकार हैं, 21 प्रतिशत बच्चों का वजन सामान्य से बहुत कम होता है तथा 12 प्रतिशत अपने 5वें जन्मदिन से पूर्व ही मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

इस प्रस्थिति के बाद यदि दलितों के विरूद्ध अपराध पर दृष्टिपात करें तो–

प्रतिदिन:

- तीन दलित महिलाओं के साथ बलात्कार होता है।
- 2 दलितों को मौत के घाट उतारा जाता है और 2 दलित घरों को जलाया जाता है।
- 11 दलितों को पीटा जाता है।

प्रति सप्ताह:

- 13 दलितों की हत्या की जाती है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

- 5 दलित घरों या झौपड़ों को जला दिया जाता है।
- 6 दलितों का अपहरण किया जाता है।

रिपोर्ट में यहां तक कहा गया है कि "ऐसे मामलों की एक बड़ी संख्या है जिनको कि अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत पंजीकृत किया जाना चाहिए किन्तु कई बार अनभिज्ञता के कारण और कई बार इच्छुक पार्टियों के दबाव में वे मामले पंजीकृत ही नहीं किये जाते। यहाँ तक कि ऐसे मामलों की सीमित संख्या में जांच अक्सर असावधानीपूर्ण ढंग से देरी के साथ होती है।"

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के उपरान्त राज्य द्वारा संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर अनेक प्रयास किये गये हैं। तथापि इन प्रयासों के बावजूद भी दलितों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। भारत में दलित मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की व्यावहारिक स्थिति के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये प्रयास नगण्य ही रहे। परिणामों की नगण्यता के बावजूद भी कुछ सकारात्मक प्रभाव दिखायी दिये जैसे दलितों में भी मानवाधिकरों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, दलित अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते दिखाई दिए। ये परिवर्तन तीव्र रूप से रोजगार के क्षत्र में आयी तकनीकी क्रान्ति के फलस्वरूप हुए जिसने भारतीय समाज की कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को प्रभावित किया है।

अन्ततः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यदि भारत में दलितों की स्थिति में सुधार करना है तो बुद्धिजीवी वर्ग को आगे आना होगा। यही वर्ग है जो न्यायपूर्ण, समतावादी, लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में अपनी भूमिका निर्वहित कर सकता है। इसे न केवल दलितों के मानवाधिकारों की वकालत करनी चाहिए वरन् मानवाधिकारों के प्रति दलित वर्ग को जागरूक एवं अभिवृत्त भी करना चाहिए। सार्वजनिक मंचों, संचार माध्यमों, संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में दलितों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार पर बहस छेड़ी जानी चाहिए। बहस एवं विमर्श से निकले निष्कर्षों के आधार पर राज्य एवं सत्तात्मक संस्थाओं द्वारा कानून, अधिनियम, जनकल्याणकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण तथा क्रियान्वयन करने पर बल दिया जाना चाहिए। इससे न केवल मानवाधिकारों को विस्तार मिलेगा वरन् सामाजिक न्याय प्राप्त करने में भी सहायता प्राप्त होगी।

सन्दर्भ सूची

1. प्रदीप त्रिपाठी, मानवाधिकार और भारतीय संविधान, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002.

2. जे.सी. जौहरी, ह्यूमन राइट्स एण्ड न्यू वर्ल्ड आर्डर : टुवार्डस परफेक्सन ऑफ द डेमोक्रेटिक वे ऑफ लाइफ, अनमोन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.
3. अरूण कुमार पिल्लई, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग : गठन, कार्य और भावी परिदृश्य, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999.
4. संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्बन्ध में बुनियादी तथ्य, संयुक्त राष्ट्र संघ प्रकाशन, 2000.
5. अधिक जानकारी के लिए देखें, भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, जोधपुर, 2007.
6. अधिक जानकारी के लिए देखें, 1955 का अधिनियम संख्यांक 22, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955.
7. अधिक जानकारी के लिए देखें, 1989 का अधिनियम संख्यांक 33, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989.
8. सुखदेव थोराट, दलित इन इण्डिया सर्च फॉर ए कॉमन डेस्टिनी, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009.
9. नेशनल क्राइम रिकोर्ड ब्यूरो, भारत सरकार, नई दिल्ली ीजजचरूध्ध्दबतइण्दपबण्पदध्बपप2006ध्बपप.2006ध्क्र।च्ण्चकि एवं ीजजचरूध्ध्दबतइण्दपबण्पदध्ब्क. ब्प्2011ध्बपप.2011ध्बिंचजमतः207ण्चकपि
10. एन.एच.आर.सी. रिपोर्ट, ऑन दी प्रिवेन्सन एण्ड एस्ट्रोसीटिज अगेन्स्ट सिड्यूल कास्ट्स (ीजजचरूध्ध्दीतबण्दपबण्पदध्चनइसपबंजपवदेध्तमचवतजज्ञठैंगमदंण्चकि)
11. ठंगप न्चमदकतं ;मकण्द्धए त्पहीज जव इम भ्नउंदए स्ंदबमत प्दजमतदंजपवदंसए छमू क्मसीपए 185 ;1987द्धण
12. ठंरूं ळण्ैण्ए भ्नउंद त्पहीजे पद प्दकपं रू प्दजमतदंजपवदंस ंदक टपवसंजपवदेए ।दउवस च्नइसपैमतेए छमू क्मसीप ;1985द्धण
13. व्उअमकज ळंपसए क्ंसपज टपेपवदे रू जीम ।दजप.ब्ंजम डवअमउमदज पद ब्वसवदपंस प्दकपंए ैहम च्नइसपबंजपवदेए छमू क्मसीप ;1995द्धण
14. ैी ळींदीलंउए ैवबपंस डवअमउमदजे पद प्दकपंए ैहम च्नइसपबंजपवदेए छमू क्मसीप ;1998द्धण
15. डंरनउकंत क्ण्छण्ए त्ंबमे ंदक ब्नसजनतम व ि प्दकपंए ेपं च्नइसपैपदह भ्वनेमए ठवउइंल ;1958द्धण
16. ैीलंउसंसए ब्ंजम ंदक च्वसपजपबंस डवइपसपेंजपवदरू जीम ठींदहपेए च्ंदबीीममस च्तीींदए श्रंपचनत ;1981द्धण
17. ठींज ।दपसए ब्ंजमए ब्सें ंदक चवसपजपबेए डंदवींत ठववाए छमू क्मसीप ;1975द्धण